अध्याय २

नादत्तमुपतिष्ठति

राजा श्वेत की कथा

अन्नदान करने और करते जाने का श्रीकृष्ण का आदेश श्रीभविष्यमहापुराण में अन्नदान माहात्म्य के वर्णन के प्रारम्भ में ही आता है। माहात्म्यवर्णन को आगे बढ़ाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपने वनवास के दिनों में श्रीराम को भी अन्न प्राप्त करने के लिये श्रम करना पड़ता है। उस समय अन्नप्राप्ति के प्रयास में लगे श्रीराम एकदा लक्ष्मण से कहते हैं कि देखो यह सारी पृथिवी धन-धान्य से परिपूर्ण है, परन्तु हमें भोजन प्राप्त करने के लिये दौड़-धूप करनी पड़ रही है। और आगे वे लक्ष्मण को बताते हैं कि पूर्वकाल में हमने पर्याप्त अन्नदान नहीं किया होगा, तभी हमें अब अन्न के लिये इस प्रकार भटकना पड़ रहा है, क्योंकि अन्न तो उतना ही प्राप्त होता है जितना दान करके अर्जित कर लिया जाता है –

यन्न प्राप्यं तदप्राप्यं विद्यया पौरुषेण वा।
सत्यो लोकप्रवादोऽयं नादत्तमुपतिष्ठति ॥[१]

जो अर्जित नहीं किया गया वह तो कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। अनर्जित को न विद्या से पाया जा सकता है, न पौरुष से। लोक में यह सत्य ही प्रचलित है कि जो दिया नहीं जाता, वह अपने पास भी स्थिर नहीं रहता, उसका उपभोग हो ही नहीं पाता।

श्रीराम के इस अनुभव का युधिष्ठिर को स्मरण करवाने के पश्चात् श्रीकृष्ण उसे राजा श्वेत की कथा सुनाने लगते हैं। विदर्भ के राजा सुदेव के पुत्र श्वेत एक महान् कीर्तिमान् राजा हुए हैं। राजा श्वेत जीवन पर्यन्त धर्मनिष्ठ रहे और उदारता से दान-पुण्य करते रहे। परन्तु उनके

[१] भविष्य ४.१६९.६, पृ.५२७।

Centre for Policy Studies www.cpsindia.org

हाथों किसी याचक का अन्न-जल से सत्कार नहीं हो पाया। अपनी धर्मनिष्ठा और अपने गुणों के कारण समय आने पर राजा श्वेत स्वर्ग में सादर सत्कृत हुए। परन्तु क्योंकि इहलोक में उन्होंने कभी किसी भूखे-प्यासे को अन्न-जल से तृप्त नहीं किया था, इसलिये स्वर्ग में भी वे भूख-प्यास से मुक्त नहीं हो पाये।

स्वर्ग में रहते हुए भी क्षुधा-पिपासा से पीड़ित राजा श्वेत अत्यन्त दीन हो कर चतुर्मुख ब्रह्मा के पास गये और अपनी व्यथा उनके सम्मुख रखते हुए पूछा कि उनके साथ ऐसा अघटनीय क्यों घट रहा है। और ब्रह्मा ने राजा श्वेत को बताया कि –

अनन्नदानस्य फलं त्वयेदमुपभुज्यते।
तर्ह्यन्नदानतो नान्यच्छरीरारोग्यकारकम्।
नान्यदन्नादृते पुंसां किञ्चित्सञ्जीवनौषधम्॥[२]

राजा श्वेत! तुम अनन्नदान का, कभी अन्नदान न करने का फल भोग रहे हो। अन्नदान को छोड़कर शरीर को स्वस्थ बनाये रखने का कोई अन्य साधन नहीं है और अन्न के अतिरिक्त मानवजाति के लिये अन्य कोई सञ्जीवनी औषध नहीं है।

राजा श्वेत दीर्घ काल तक क्षुधा-पिपासा से पीड़ित रहते हैं और पुनः पुनः अपने ही पार्थिव शरीर का भक्षण कर अपनी भूख को शान्त करने का प्रयास करते रहते हैं। अन्ततः अगस्त्य मुनि राजा श्वेत से अन्न ग्रहण करके उन्हें अनन्नदान के पाप से मुक्त करते हैं। अगस्त्य मुनि को श्रद्धापूर्वक अन्न से तृप्त करने के पश्चात् राजा श्वेत अपने गले से एक देदीप्यमान माला उतार मुनि को दक्षिणा के रूप में भेंट कर देते हैं। इस प्रकार राजा श्वेत का दक्षिणायुक्त अन्नदान सम्पन्न होते ही, उनकी भूख-प्यास मिट जाती है और वे स्वस्थचित्त हो स्वर्ग में वास करने लगते हैं। अनन्त काल उपरान्त जब श्रीराम अगस्त्य मुनि के आश्रम पर आते हैं, तो वे उन्हें राजा श्वेत की कथा बताते हैं और राजा श्वेत की वही देदीप्यमान माला श्रीराम को सस्नेह भेंट कर देते हैं।

अगस्त्य मुनि का श्रीराम को कथा सुनाना

राजा श्वेत का प्रसङ्ग श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में आता है। श्रीराम शम्बूकवध के उपरान्त अयोध्या लौटते हुए अगस्त्य मुनि के आश्रम पहुँचते हैं। उनका स्वागत-सत्कार करते हुए अगस्त्य मुनि राजा श्वेत से मिली देदीप्यमान माला श्रीराम को भेंट कर देते हैं और फिर

[२] भविष्य ४.१६९.२२-२३, पृ.५२७।

अगस्त्य मुनि का कथा कहना

उस दिव्य आभूषण की प्राप्ति की कथा सुनाने लगते हैं। श्रीराम को राजा श्वेत के विकट अनुभव का स्मरण करवाते हुए अगस्त्य मुनि कहते हैं[३] –

''श्रीराम! यह कथा पूर्वकाल के एक त्रेता युग की है। उस काल में एक विशाल वन हुआ करता था। वह वन चारों ओर सौ योजन तक फैला हुआ था। परन्तु उस विस्तृत वन में न कहीं कोई पशु थे, न पक्षी।

''उत्तम तपस की साधना के लिये उपयुक्त स्थान ढूँढते हुए एकदा मैं उस निर्जन एकान्त वन में प्रविष्ट हुआ। उस वन की शोभा अकथनीय थी। वहाँ अनेक रूप-रङ्ग के पेड़ थे और सारा वन मधुर सुस्वादु कन्दमूलों और फलों से परिपूर्ण था। उस अनन्त बाहुल्य के मध्य एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर फैला था। एक योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा वह सरोवर हंस, कारण्डव और चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित था। उस सरोवर का जल कमल-कमलिनियों से आच्छादित था, उसमें काई आदि के लिये कोई अवकाश ही नहीं था। वह सरोवर अपने आप में एक आश्चर्य ही था। उसके पानी-सा स्वादु और सन्तुष्टिकर पानी और कहीं नहीं हो सकता।

''उस सुन्दर-स्वच्छ सरोवर के निकट एक पुरातन आश्रम था। सरोवर के समान ही वह आश्रम भी विशाल और अद्भुत था। और वह महान् आश्रम निर्जन पड़ा था, किसी तपस्वी का वहाँ वास नहीं था।

''पुरुषोत्तम श्रीराम! ग्रीष्म की उस रात मैंने उस आश्रम में निवास किया और फिर प्रभात-वेला में उठकर मैं स्नानादि प्रातः कर्म करने के लिये निकल पड़ा। तब अचानक मुझे उस सरोवर पर एक शव तैरता हुआ दिखायी दिया। वह शव भली भाँति पोषित था। वह स्वस्थ और स्वच्छ दिखायी देता था, उसमें सड़न का आभास-मात्र भी नहीं था। वास्तव में उस सरोवर पर तैरता वह शव अत्यन्त लक्ष्मीसम्पन्न ही दिखायी दे रहा था।

''उस शव को देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गया और उसी के विषय में सोचता हुआ कुछ घड़ी के लिये मैं वहीं सरोवर के तट पर बैठ गया। तभी मैंने वहाँ एक दिव्य रथ को उतरते देखा। उस रथ की शोभा भी अतुलनीय थी। वह अत्यन्त विशाल रथ हंसों से जुता था और मन की गति से विचरण कर रहा था।

''उस दिव्य रथ पर स्वर्गलोक का कोई दिव्य पुरुष विराज रहा था। दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित सहस्रों अप्सराएँ उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगी थीं। उसकी प्रसन्नता के लिये उन अप्सराओं में से कुछ रम्य गीत गा रही थीं, कुछ मृदङ्ग, ढोल और वीणा जैसे वाद्य

[३] रामायण उत्तर ७७ व ७८, पृ. १६२७-३०।

Centre for Policy Studies www.cpsindia.org

बजा रही थीं, कुछ नाच रही थीं, और कुछ अन्य कमलनयनी अप्सराएँ सोने के दण्डों वाले एवं चन्द्रकिरणों से शुभ्र चँवर उस दिव्य पुरुष के मुख पर धीरे-धीरे झुला रही थीं।

''रघुकुलनन्दन श्रीराम! तब सहसा स्वर्गलोक का वह दिव्य पुरुष अपना सिंहासन छोड़ उस विमान से ऐसे नीचे उतरने लगा मानो अंशुमान सूर्य ही मेरु पर्वत के शिखर से नीचे उतर रहे हों। और फिर मेरे देखते-देखते वह सरोवर पर तैरते उस शव का भक्षण करने लगा। उस शव के सुपुष्ट एवं प्रचुर मांस को जी भरकर खाने के उपरान्त स्वर्गलोक का वह पुरुष उस सरोवर में उतरकर हाथ-मुँह धोने लगा। विधिपूर्वक आचमन कर जब वह विमान पर चढ़ने को उद्यत हुआ तो मैंने उस देवतुल्य पुरुष के सम्मुख प्रस्तुत हो उससे इस प्रकार पूछा –

'सौम्य! देवों जैसे दिखने वाले आप कौन हैं? आप क्यों ऐसे गर्हित आहार का उपभोग करते हैं? ऐसा देवोपम भाव और ऐसा आहार किसका हो सकता है? सौम्य! मैं आश्चर्यचकित हूँ। मैं यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि यह शव ही आपके लिये उपयुक्त आहार है। मैं इस सब का यथार्थ जानना चाहता हूँ।'

''रघुकुलनन्दन श्रीराम! शुभ वचनों से युक्त मेरे उस प्रश्न के उत्तर में स्वर्गलोक का वासी वह पुरुष दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा –

'ब्रह्मन्! मेरे पूर्वकर्म ही वर्तमान में मेरे शुभाशुभ के कारण हैं। उन अनतिक्रमणीय पूर्वकर्मों की कथा सुनो –

'बहुत पहले की बात है। तब मेरे महायशस्वी पिता सुदेव विदर्भ के राजा हुआ करते थे। वे अत्यन्त वीर्यवान् थे, उनकी ख्याति तीनों लोकों में व्याप्त थी। राजा सुदेव की दो पत्नियाँ थीं। उन दोनों से उनको एक-एक पुत्र की प्राप्ति हुई। उन दो पुत्रों में से ज्येष्ठ मैं, श्वेत के नाम से जाना गया। मेरे छोटे भाई का नाम सुरथ रखा गया।

'पिता सुदेव का स्वर्गवास होने पर पुरवासियों ने मुझे राजा के पद पर अभिषिक्त किया। मैंने अत्यन्त सावधानी से धर्म का अनुसरण करते हुए राज्य किया। उत्तम व्रत का पालन करने वाले ब्रह्मन्! इस प्रकार धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा और राज्य का संवहन करते हुए एक सहस्र वर्ष बीत गये।

'तब एक दिन मुझे सहसा अपनी नियत आयु का ज्ञान हुआ। काल की अटल गति का स्मरण कर मैं वन की ओर निकल पड़ा। उस समय मैंने तपस्या के लिये पशु-पक्षियों से शून्य इसी दुर्गम वन में प्रवेश किया। अपने भाई सुरथ का राजपद पर अभिषेक कर मैंने इस सरोवर के समीप चिरकाल तक तपस्या की। इस विस्तृत वन में तीन सहस्र वर्षों तक मैं कठिन तपस्या करता रहा। तब मुझे उत्तम ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई।

उन्होंने सोचा कि उन जैसे वैभवशील राजा के लिये अन्न जैसी तुच्छ वस्तु भी क्या दान देने योग्य है? राजा श्वेत ने अनन्त दान किये। वे बहुमूल्य रत्न-आभूषण, उत्तम वस्त्र, अनमोल हाथी और भरे-पूरे नगर तक दान में देते रहे। उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर अनेक अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया और प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर अथाह धन-सम्पत्ति दान में बाँट दी। परन्तु राजा श्वेत ने कभी किसी को अन्न-जल का दान नहीं दिया।

समय आने पर राजा श्वेत परलोकगामी हुए और वहाँ उनके भव्य दान कर्म के अनुरूप उन्हें स्वर्ग में सादर स्थान दिया गया। परन्तु स्वर्ग में भी राजा श्वेत भूख-प्यास से मुक्त नहीं हो पाये। स्वर्ग में इस प्रकार भूख-प्यास से व्यथित होते हुए राजा श्वेत को एक बार वसिष्ठ मुनि दिखायी दिये। राजा श्वेत अत्यन्त दीन भाव से उन्हें अपनी त्रासद नियति से छुटकारा दिलवाने की प्रार्थना करने लगे।

वसिष्ठ मुनि राजा श्वेत की दशा देखकर चिन्तित हो उठे। परन्तु उन्हें भी समझ नहीं आ रहा था कि वे राजा श्वेत की सहायता कैसे करें। अतः श्रीभविष्यमहापुराण में उद्धृत श्रीराम के वचनों को प्रायः दोहराते हुए वसिष्ठ मुनि ने राजा श्वेत को स्मरण कराया कि जो दिया नहीं गया, वह तो प्राप्त नहीं हो सकता – अदत्तं नोपतिष्ठेत कस्यचित् किंचिदुत्तमम्।[६]

अन्ततः मुनि वसिष्ठ राजा श्वेत के लिये एक लम्बे प्रायश्चित्त का विधान करते हैं। परन्तु उससे पूर्व एकदा पुनः राजा श्वेत को अन्नदान की महिमा समझाते हुए वे कहते हैं –

रत्नहेमप्रदानेन भोगवान् जायते नरः।
अन्नदानप्रदानेन सर्वकामैस्तु तर्पितः।
तन्न दत्तं त्वया राजन् स्तोकं मत्वा नराधिप॥[७]

बहुमूल्य स्वर्ण-रत्न आदि का दान करने से व्यक्ति ऐश्वर्य को प्राप्त होता है। परन्तु सब कामनाओं की तुष्टि तो अन्नदान से ही होती है। राजन्! उसी अन्न का दान आप से नहीं हुआ। अन्न को तुच्छ मानकर आप अन्नदान से वञ्चित रह गये।

इस प्रकार राजा श्वेत की कथा के माध्यम से श्रीवराह ने अन्नदान के सरल परन्तु अपरिहार्य व्रत का विधान किया।

---

[६] वराह ९८.७५, पृ. ३४६।

[७] वराह ९८.७६, पृ.३४६।

राजा श्वेत की कथा

अन्नदान ही सदाव्रत है

राजा श्वेत की कथा तेरहवीं शती के ग्रन्थ हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि में भी कही गयी है। हेमाद्रि चालुक्य राज्य के एक विद्वान् मन्त्री थे। उन्होंने अपने वृहद् ग्रन्थ में इतिहास, पुराण और अन्य स्मृतियों के आधार पर धर्म के सार-तत्व का सङ्ग्रह किया।

चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ का एक प्रमुख खण्ड 'व्रतखण्ड' है। इस खण्ड में गृहस्थ द्वारा नियमपूर्वक अनुसरणीय व्रतों का माहात्म्य बताया गया है। साथ ही प्रत्येक व्रत के लिये उपयुक्त तिथि-मुहूर्त और उसके विधि-विधान का वर्णन भी इस खण्ड में हुआ है। व्रतखण्ड के बत्तीस अध्यायों में से एक लम्बा अध्याय 'नानातिथिव्रतानि' शीर्षक से है। इस अध्याय में अतिथियों के सादर-सत्कार सम्बन्धी व्रत-नियमों का विधान है। अध्याय के एक प्रमुख परिच्छेद में अन्नदानमाहात्म्य का वर्णन है। इस परिच्छेद में हेमाद्रि श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरकाण्ड से राजा श्वेत की कथा उद्धरित करते हुए अन्त में लिखते हैं – 'इति श्रीभविष्योत्तरे सदाव्रतं नामान्नदानमाहात्म्यम्।'[८] श्रीभविष्योत्तर से लिया गया 'सदाव्रत' नाम का यह अन्नदान माहात्म्य पूरा हुआ।

इस प्रकार हेमाद्रि अन्नदान को सदाव्रत की संज्ञा देते हैं। सदाव्रत का अर्थ ऐसे व्रत से है जो नित्य निभाया जाये। व्रतखण्ड के अन्य प्रायः सभी व्रत नैमित्तिक व्रत हैं – उनका अनुष्ठान नियत तिथि-मुहूर्त में, तारा-ग्रहों की अन्तरिक्ष में नियत स्थिति के समय, करने का विधान है। परन्तु अन्नदान सदाव्रत है। अन्नदान के लिये तिथि-मुहूर्त का विचार नहीं किया जाता। वह तो सर्वदा सब समय ही करने योग्य है।

आज भी भारतवर्ष में अन्नदान को सदाव्रत के नाम से ही जाना जाता है।

अन्न बाँटकर खाना
अनुशासित जीवन की मर्यादा है

अन्नदान सदाव्रत है और इस व्रत का माहात्म्य राजा श्वेत की कथा में है। वैभवशाली, वीर्यवान् और धर्मभीरु राजा श्वेत, जिन्होंने धर्म के अनुरूप जीवन जिया और धर्म के अनुरूप ही राज्य किया, जिन्होंने अनेक यज्ञ किये और अथाह धन-सम्पत्ति दान में बाँट दी, जो अपनी नियत आयु का आभास पाते ही सब धन-वैभव और राजपाट छोड़कर वानप्रस्थ हो गये, परन्तु

[८] चतुर्वर्गचिन्तामणि *व्रतखण्ड* २१, पृ.४७५।

जो इतना सब करते हुए भी अन्नदान करना भूल गये और इस भूलस्वरूप जो स्वर्ग में भी भूखे-प्यासे रहे और अपने ही शरीर का भक्षण करने पर बाध्य हुए – ऐसे राजा श्वेत और ऐसी उनकी कथा भारतीय चेतना में अन्नदान की गहन पैठ की ही द्योतक है।

राजा श्वेत की कथा आर्षसाहित्य में अनेक स्थानों पर आती है। विभिन्न ग्रन्थों में राजा श्वेत की कथा के सन्दर्भ और वर्णन में थोड़ा-बहुत अन्तर तो रहता ही है। परन्तु जहाँ भी राजा श्वेत की कथा कही गयी है वहाँ इस बात पर अवश्य बल दिया गया है कि जिस वस्तु का दान नहीं किया जाता उसका उपभोग भी नहीं हो पाता, और इसलिये जो लोग अपने पार्थिव जीवन में दूसरों की भूख-प्यास नहीं मिटाते, वे उत्तम लोकों में भी भूखे-प्यासे रहने के लिये अभिशप्त हो जाते हैं। श्रीराम अपने वनवास के दिनों लक्ष्मण को यही शिक्षा देते हैं, यही शिक्षा श्रीभविष्यपुराण में भगवान् ब्रह्मा राजा श्वेत को देते हैं और यही उपदेश श्रीवराहपुराण में राजा श्वेत को वसिष्ठ मुनि से मिलता है।

श्रीवराहपुराण में वसिष्ठ मुनि राजा श्वेत को यह भी समझाते हैं कि अनेक प्रकार के बहुमूल्य दान अन्नदान का स्थान नहीं ले सकते। राजा श्वेत की उदार दानशीलता से अन्ततः उनका अनन्नदान का दोष तो नहीं धुल पाया। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय चेतना में अन्नदान केवल पुण्य अर्जन का साधन नहीं है, ऐसे किसी पुण्य के अर्जन का तो निश्चय ही नहीं जिसे अन्यथा अर्जित पुण्यों के प्रतिफल स्वरूप पाया जा सके। स्वयं भोजन पर बैठने से पहले दूसरों को खिलाना तो अनुशासित जीवन की अनुल्लङ्घनीय मर्यादा है। अन्नदान करने से कुछ पुण्य-अर्जन तो होता ही होगा, परन्तु इस सन्दर्भ में महत्त्व पुण्य अर्जन का नहीं, मर्यादाभङ्ग के पाप से बचने का है। अपने शरीर का भक्षण करने को बाध्य हुए महान् वैभवशील राजा श्वेत की दिव्य छवि अर्जित पुण्यों के अभाव का नहीं, किसी सनातन मर्यादा के घोर उल्लङ्घन का ही स्मरण कराती है।

भारतीय दृष्टि में जीवन सृष्टि के सभी भावों से अंशदान पाकर ही सम्भव होता है। इसलिये उत्पन्न होने और जीवन निर्वाह करने की सहज क्रिया से ही व्यक्ति मानव समाज के प्रति ही नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति ऋणी हो जाता है। स्वयं भोजन करने से पूर्व सृष्टि के अन्य सभी पक्षों का भाग निकालना और दूसरों की भूख-प्यास शान्त करने का प्रयास करना उस सहज ऋण को स्वीकारना और उसका आंशिक प्रतिदान करना है। उस ऋण को स्वीकार न करने और उससे उऋण होने के सतत प्रयास से विमुख होने वाला व्यक्ति आदान-प्रदान की उस निरन्तर शृङ्खला से च्युत हो जाता है जिस पर यह पूरी सृष्टि आधारित है। इस शृङ्खला से च्युत व्यक्ति मानव समाज के लिये ही नहीं सम्पूर्ण सृष्टि के लिये ही चण्डाल-सा है। सृष्टि में कुछ ऐसा नहीं जो उसे प्रदान

करने योग्य हो, जो उसका भोजन हो सके। सृष्टि के आदान-प्रदान से विमुख अपने ही में रत उस व्यक्ति को तो अपने ही शरीर का भोजन करना पड़ता है। इस प्रकार अपने शरीर का भक्षण कर रहे राजा श्वेत सृष्टि से बहिष्कृत चण्डाल-से ही दिखते हैं।

अपने शरीर का भक्षण कर रहे राजा श्वेत की छवि का आर्ष साहित्य में जो चित्रण हुआ है वह प्रायः जुगुप्सा का भाव जगा जाता है। परन्तु यह जुगुप्सित छवि सम्भवतः उस गहन जुगुप्सा की ही परिचायक है जो अपनी सनातन मर्यादाओं के अनुरूप चलते भारतीय समाज में अन्यों का भाग निकाले बिना स्वयं खाने की क्रिया के प्रति रही होगी। आगे के अध्यायों में हम पुनः पुनः उस घोर पाप का वर्णन सुनेंगे जो उन लोगों के भाग्य में निश्चित लिखा जाता है जो सब याचकों पर अपने द्वार रुद्ध कर अकेले भोजन का आनन्द लेते हैं, जो अपने आसपास के कीट-पतङ्गों, पशु-पक्षियों और मनुष्यों को खिलाये बिना स्वयं भोजन पर बैठते हैं और जो तरसाई आँखों से देख रहे भूखे बच्चों की अवहेलना कर अपना पेट भरते हैं। फलों एवं कन्दमूलों से परिपूर्ण निर्जन वन में उस सुन्दर सरोवर के तट पर बैठकर अपने ही पार्थिव शरीर का भोजन कर रहे महान् वैभवशील राजा श्वेत बाँटे बिना अकेले खाने के पाप की भयङ्कर परिणति के द्योतक हैं।

राजा श्वेत की त्रासद नियति उनके कर्मों का ही परिणाम है। वे अन्न सम्बन्धी सनातन भारतीय मर्यादाओं के उल्लङ्घन का अनतिक्रमणीय फल ही भोगते हैं। अन्न सम्बन्धी ये सनातन भारतीय मर्यादाएँ भारतीय साहित्य के मूलभूत ग्रन्थों से लेकर सम्पूर्ण आर्ष साहित्य में प्रतिष्ठित हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् जैसी श्रुति का उपदेश है –

> न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद्व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते ॥[९]
>
> द्वार पर आये किसी याचक को उसका अन्न-जल से सत्कार किये बिना, उसका समुचित आतिथ्य किये बिना, न लौटायें। यह व्रत है, मानव जीवन की मर्यादा है। इसलिये किसी-न-किसी प्रकार से प्रचुर अन्न प्राप्त करें और घोषणा करें कि प्रचुर अन्न उपस्थित है, सभी आयें और इसका उपभोग करें।

अन्न की बहुलता के इस व्रत का विधान करने के पश्चात् उपनिषद् इस अनुल्लङ्घनीय नियम का प्रतिपादन करता है कि अन्न तो ठीक उतनी मात्रा में ही प्राप्त होता है जितनी मात्रा में उसका

[९] तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१०, पृ.२३०।

दान किया जाता है –

एतद्वै मुखतोऽन्ꣳ राद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्ꣳ राध्यते। एतद्वै
मध्यतोऽन्ꣳ राद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्ꣳ राध्यते। एतद्वा
अन्ततोऽन्ꣳ राद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्ꣳ राध्यते॥[१०]

जो प्रचुर मात्रा में अन्न पकाकर ऊँचे सम्मान-सत्कार के साथ प्रचुर अन्नदान करता है, उसे वैसे ही ऊँचे सत्कार के साथ प्रचुर अन्न प्राप्त होता है।

जो मध्यम मात्रा में अन्न पकाकर मध्यम सम्मान-सत्कार के साथ मध्यम मात्रा में अन्नदान करता है, उसे वैसे ही मध्यम सम्मान-सत्कार के साथ मध्यम मात्रा में अन्न प्राप्त होता है।

और जो हीन मात्रा में अन्न पकाकर, अवहेलना के भाव से किञ्चित् मात्रा में ही अन्नदान करता है, उसे वैसी ही अवहेलना के साथ किञ्चित् अन्न प्राप्त हो जाता है।

[१०] तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१०, पृ.२३०।